नीली गिटार

दीपक शर्मा

नीली गिटार

मामा के नाम पर प्रत्येक स्वतंत्रता दिवस पर शहर में एक विशेष समारोह का आयोजन किया जाता है।

https://www.hindiadda.com/neeli-guitar/

उनके चित्र पर फूलमालाएँ चढ़ाई जाती हैं। उनकी जीवनी व जीवन-चर्या के अनेक प्रसंग साँझे किए जाते हैं।

मित्रों-परिचितों द्वारा।

मेरे द्वारा।

बात की जाती है स्वतंत्रता संग्राम में रही उनकी भागीदारी की... सन 1942 के 'करो या मरो' आंदोलन के अंतर्गत कैसे उन्होंने अपने तीन साथियों के संग अपने गाँव की पुलिस चौकी पर भारतीय तिरंगा फहराया था और दो साल जेल काटी थी...

बात की जाती है, सफल रही उनकी पुलिस सेवा की... जिसमें सन 1947 के एकदम बाद उन्हें एक प्रतिष्ठित स्वतंत्रता सेनानी होने के नाते बिना कोई परीक्षा दिए भारत सरकार ने डिप्टी पुलिस निरीक्षक के पद पर उन्हें भरती कर लिया था... उनके चौबीसवें ही साल में...

बात की जाती है, उनके ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन की, जो व्रत उन्होंने सन 1948 में भूमिविहीन रहे स्कूल अध्यापक अपने पिता की अकाल मृत्यु पर लिया था। अनाथ रह गए अपने चार भाई-बहनों के भरण-पोषण हेतु। साधनविहीन रहे अपने ताऊ-चाचा की सहायता हेतु...

बात की जाती है उनके चरित्र बल की, उनके आत्म-निग्रह की, उनके सूत्र-वाक्यों की, उनके साहसिक कार्यों की, उनके ऊँचे आदर्शों की...

मगर एक बात नहीं छेड़ी जाती...

यह बात गुप्त रखी जाती है...

अनछुई...

अपनी तहें अपने में समेटे...

वह बात कजली की है।

कजली, वहाँ पहले से विराजमान थी जब माँ मुझे मामा के पास छोड़ने गई थीं।

सन **1970** में।

गाँव के स्कूल में मेरी नवमी जमात पूरी होते ही।

"यह आकाशबेल कहाँ से टपकी?" माँ ने मामा से रोष जताया था।

"इसके पिता मेरे मित्र थे।" मामा बोले थे, विधुर थे। लड़की का इलाज करवाते-करवाते-करवाते कंगाल हो चुके थे। खुद भी बीमार थे। जान लिए थे वह बचेंगे नहीं। लड़की को लेकर चिंतित थे। तभी मैंने कहा, लड़की मैं रख लूँगा..."

"मगर अपने कमरे ही में क्यों?" हम माँ-बेटे ने कजली को मामा के कमरे के दूसरे एकल पलंग पर ही बिछे पाया था।

"क्योंकि उसे हर समय चौकसी की जरूरत है, उसकी मांसपेशियाँ पल-पल कमजोर पड़ती जा रही हैं। क्या मालूम कहाँ की कौन सी मांसपेशी कब अपनी हरकत खो बैठे? दिल की? फेफड़े की? चेहरे की? हाथ की? पैर की? दिन में तो अर्दली उसे देखे रहते हैं मगर रात में उसे देखने वाला कोई नहीं..."

"ऐसी नाजुक हालत है तो उसे सरकारी अस्पताल में क्यों नहीं छोड़ आते? वहाँ देखने को तमाम डॉक्टर रहेंगे, नर्सें रहेंगी..."

"क्यों छोड़ आऊँ वहाँ?" मामा बिफरे थे, "कैसे छोड़ आऊँ वहाँ? जब मैंने उसके मर रहे बाप से वादा किया है, अब वह मेरी देखभाल में रहेगी? तो?"

"मगर वह एक लड़की है। उसे तुम्हारे कमरे में यों नहीं लेटना-सोना चाहिए।" माँ ने कहा था।

"मेरे लिए वह लड़की नहीं है। केवल एक जीव है। समझ लो वह हमारे ताऊजी की कोई बीमार गाय है। जिसे देखभाल की, इलाज की, चारा-पानी की जरूरत है..."

यहाँ यह बताता चलूँ कि उन दिनों मामा के गाँव में उनके ताऊजी उधर बीमार गऊओं को अपने दालान में हाँक लाते रहे थे, उनका इलाज भी करवाया करते और उन्हें चारा-पानी भी देते-दिलवाते।

माँ फिर चुप कर गई थीं। शायद डर भी गई थीं। मामा कहीं नाराज हो गए तो उनके साथ मुझे भी हमारे गाँव विदा कर देंगे। मेरी पढ़ाई पूरी नहीं करवाएँगे।

परिवार में हम सभी मामा से भय तो खाते ही थे। मौके-बेमौके उनके तेवर भी बदलते-बिगड़ते रहते। किसी को महत्व देने पर आते तो उसे आकाश पर जा

बिठलाते। मगर मिजाज खराब होता तो उसी की मिट्टी पलीद कर देते। मौजी इतने कि मन में मौज होती तो मुट्ठी भर सोना भी दे सकते, वरना मुट्ठी बाँधने पर आते तो लाख कहने-समझाने पर भी मुट्ठी ढीली न करते।

कजली को मैं माँ के जाने के बाद मिला।

वह भी मामा ही के आदेश पर, "लड़की को साढ़े दस पर फलों का रस पिलाना है और साढ़े बारह पर सब्जियों का सूप। खाना वह मेरे आने पर खाएगी। मेरे साथ..."

उस समय साढ़े दस बजने में पूरे पैंतालीस मिनट बाकी थे किंतु मैंने उसी समय अर्दली से रस निकालने की प्रक्रिया की जानकारी ले ली। मामा के घर में उस समय बिजली की मिक्सी तो थी नहीं। प्लास्टिक का एक उपकरण था, जिस पर छीली हुई मौसमी के टुकड़े बारी-बारी से रखकर भींचे और परे जाते थे और रस निकल आता था।

एक मौसमी का रस मुझे जब कम लगा तो गिलास भरने के लिए मैं तीन मौसमी काम में लाया। अर्दली की आनाकानी के बावजूद। हालाँकि रस बनाने में मैंने उसकी सहायता किंचित भी न ली थी।

"मामा कह गए थे आपको यह रस पिलाना है।" कजली के पलंग के पास जाकर मैंने गिलास उसकी तरफ बढ़ाया।

"तुमने तैयार किया है?" वह मुस्कुराई, "इतना ज्यादा?"

"जी", मैं लजा गया।

"तुम्हारी माँ क्या मेरी ओर देखने को भी मना कर गई हैं?" वह हँसी।

मैं घबरा उठा। क्या उसने सुन लिया था जो मेरी माँ जाते समय मुझे फिर कह गई थी - "उस लड़की के पास फटकना भी मत। क्या मालूम कब उसकी साँस टूट जाए और आफत तुम पर आन पड़े?"

"मेरी आँखें और कान बहुत तेज हैं। आँखें एक नजर में सामने वाले के दिल का पूरा नजारा ले सकती हैं और कान दूर से भी किसी की कनफुसकी की कानाबाती पकड़ सकते हैं।"

"जी।" मैं झेंप गया।

"गिलास अभी मेज पर रख दो। तुम्हें पहले मुझे बिठाना होगा।"

"जी..."

जैसे ही मैंने अपनी बाँहों में उसे समेटा उसने अपना सिर मेरी छाती पर ला टिकाया और बोली, "सिरहाने की तरफ दो तकिए लगाओ मेरी टेंक के वास्ते..."

जब तक मैंने तकिए जमाए उसके शरीर की गंध मेरी नासिकाओं से टकराती रही। वह गंध माँ की गंध से बहुत भिन्न थी। बहुत तेज और उग्र। उसका वजन भी माँ से लगभग एक तिहाई से भी कम रहा होगा। माँ स्थूल व गोल-मटोल थीं, जबकि कजली कृशकाय थी, एकदम हड्डियों का ढाँचा। उसका चेहरा भी अलग था। माँ के चेहरे से कहीं ज्यादा कोमल व सुहावना।

जूस पीते समय भी उसने मुझे अपने निकटस्थ रखा। गिलास मेरे हाथ में रहा और उसके होंठों तक निर्दिष्ट करते रहे उसके हाथ।

सब्जियों का सूप भले ही अर्दली ने तैयार किया किंतु कजली के पास मैं ही लेकर गया।

चम्मच-भर-चम्मच उसे पिलाने। बीच-बीच में उसके कंधों व धड़ की ऐंठन व फड़कन को सँभालते हुए।

दोपहर में जब तक मामा आए कजली मुझे अपने बारे में काफी कुछ बता चुकी थी। उसकी इस बीमारी ने उसकी ग्यारहवीं की जमात में जोर पकड़ा था। उसका स्कूल उससे छुड़वाते हुए। मृत्यु के हाथों माँ उसने अपने तीसरे वर्ष में गँवाई थी और पिता अपने इसी तेईसवें वर्ष में। अभी बारह दिन पहले। अस्पताल में, जहाँ उनके दाखिल हो जाने पर मामा उसे अपने साथ लिवा लाए थे। पिछले तीन वर्ष से कैंसर ने उन्हें घेर रखा था और अपने जीवनकाल के अंतिम दो माह उन्होंने उसी अस्पताल में बिताए थे।

"सूप और जूस मैंने पिला दिया था।" दोपहर में मामा के घर में कदम रखते ही मैंने उन्हें अपनी आज्ञाकारिता का प्रमाण देना चाहा था, "और रोज भी पिला सकता हूँ।"

"क्यों?" मामा बिगड़ लिए, "रोज क्यों? तुम यहाँ पढ़ाई करने आए हो और कल से तुम अपना पढ़ने जाओगे। एक इंटर कॉलेज की दसवीं जमात में दाखिला लोगे। उस कॉलेज के प्रिंसिपल से बात पक्की करके ही आ रहा हूँ।"

"जी।" मैं काँपने लगा। क्या वह भाँप लिए थे कजली के सान्निध्य में बिताए उन एकाध घंटों ने मेरे भीतर एक प्रेमोन्माद का सूत्रपात कर दिया था?

अगले दिन से मैं अपने उस इंटर कॉलेज जाने जरूर लगा था मगर कॉलेज के बाद की पूरी दोपहरें मेरी कजली के साथ ही बीता करतीं।

कभी हम लूडो खेलते तो कभी साँप-सीढ़ी का खेल।

ये दोनों खेल मैंने इसी शहर में आन खरीदे थे। माँ के दिए रुपयों से।

जिस दिन कजली का जी अच्छा होता वह तकियों का सहारा लेकर अपने पलंग पर बैठ लेती और पासा भी फेंकती और अपनी गिट्टियाँ भी आगे बढ़ाने में सफल हो जाया करती। मुझे अपने ही पलंग पर सामने बिठलाकर।

जान बूझकर मैं उसे जीत लेने देता। जिस पर वह हँसती और मैं निहाल हो जाता।

मगर जिस किसी दिन वह कष्ट में रहती, वह मुझे अपने पिता द्वारा खरीदी गई एक काव्य-पुस्तक थमा देती और उसमें से मुझे अपनी पसंद की कविताएँ पढ़ने को बोलती।

किताब के कवि थे, वौलेस स्टीवेंज और कजली की मनपसंद कविता रही, 'द मैन विद द ब्लू गिटार'।

वह कविता मैंने इतनी बार पढ़ी थी कि मुझे उसका एक अंश भी कंठस्थ हो गया था।

'दे सेड, 'यू हैव अ ब्लू गिटार

यू डू नॉट प्ले थिंग्ज एज दे आर'।

द मैन रिप्लाइड, 'विंग्ज एज दे आर।

आर चेंजड अपॉन द ब्लू गिटार।

(उन्होंने कहा, 'तुम्हारे पास एक नीला गिटार है।

और तुम उस पर चीजें वह नहीं रहने देते, जैसी वे होती हैं।

वादक ने उत्तर दिया, 'चीजें ही वैसी नहीं रहतीं

जैसे ही वह इस नीले गिटार पर पहुँचती हैं...')

अंततोगत्वा उसे बीसवीं-बाईसवीं बार पढ़ते समय मेरा आनंदातिरेक कजली से पूछ ही बैठा, "वह नीली गिटार तुम ही तो नहीं हो जिसके पास आते ही सब बदल जाया करता है?"

और तत्क्षण उसने अपना प्रश्न दाग दिया, "और मैन कौन है? बाबा या तुम?"

"यह तो तुम्हीं बता सकती हो उस गिटार में झनक कौन लाता है? बाबा या मैं?"

"अगर मैं कहूँ दोनों ही... जभी चीजें वह नहीं रह पातीं जैसी वे वास्तव में हुआ करती हैं..."

वही वह पल था जिसमें मेरा हुलास मुझसे दूर निकल भागा था और विद्वेष मेरे निकट आन खिसका था।

मामा को ध्यान से देखना-सुनना मैंने जभी शुरू किया।

विशेषकर कजली के संदर्भ में।

और मैंने पाया मामा और मैं बेशक उस संदर्भ में एक ही 'पेज' पर थे, एक ही पृष्ठ पर, मगर हम उसे सदृश रूप में पढ़ नहीं रहे थे।

हमारे कुटुंब-परिवार से सर्वथा असंबद्ध होने के नाते, कजली बाहरी व्यक्ति तो हम दोनों के लिए थी किंतु उस बात के रहते एक ओर जहाँ मेरा पंद्रह-वर्षीय रूढ़िगत संकोच मुझे निरुद्देश्य कजली को स्पर्श करने की आज्ञा नहीं देता था, वहीं उसके साथ मामा का स्पर्श, अक्सर उच्छृंखल हो उठता और कई बार निरंकुश भी।

और देखने की बात यह कि कजली भी उनके उस व्यवहार-वैचित्र्य से अप्रसन्न नहीं होती।

बल्कि दमक उठती, नवयौवना बन जाती। इश्कबाजी के हाथ-भाव दिखलाती हुई। चोचलहाई लिए। प्रत्यक्ष रूप से न सही, किंतु अप्रत्यक्ष ढंग से तो निश्चित ही।

अपने उस पंद्रहवें वर्ष में मैं रत्यात्मकता का प्रारंभिक ज्ञान भी न रखता था किंतु यह अवश्य समझ रहा था कि दुनिया-भर को नियम-विनियम का बोध करवाने वाले

मामा सुविदित अनुशास्ता न थे; कजली से उनका सरोकार निष्काम न था, निर्दोष न था। सदोष था, कामुक था।

हाँ, कजली का विस्मयकारी व्यवहार जरूर मेरी समझ से बाहर रहा था। किंतु पश्चदृष्टि से आज मैं अनुमान लगा सकता हूँ, मामा द्वारा उपलब्ध हो रहे अपने इलाज व भरण-पोषण के लिए आभार प्रकट करने का कजली के पास शायद वही एक-मात्र साधन रहा था या फिर शायद अपने रोग के कारण यौनिकता से सर्वथा अनभिज्ञ रही कजली को मामा की प्रियोपेक्षित वह विषयासक्ति भाती ही रही थी। तिस पर मामा के पास पद था, धन था, प्रतिष्ठा थी, साधन थे, संपर्क थे और उनके 'इशारे मात्र' से तमाम डॉक्टर घर आ जाया करते, कजली का कष्ट दूर करने। उसमें प्राण डालने। नवीन जीवन का संचार करने और वह अभी जीना चाहती थी। दीर्घकाल तक जीना चाहती थी। ऐसे में अपनी बीमारी की कौंध तथा स्त्री-लिंग लक्षण की चौंध कैसे न वह आगे बढ़ाती? एक फ्रांसीसी कहावत भी है, देयर इज ऑलवेज वन हू किसिज एंड वन हू ऑफर्ज द चीक। **(**कोई चुंबन तभी लेता है जब दूसरा अपना गाल पेश करता है**)**

तथापि यह तो तय है कि कजली व मामा का वह पारस्परिक उत्ताप व उत्साह मुझसे देखते न बनता। देखते ही मेरा चित्त बँटने लगता, चित्त पर कभी दुख चढ़ता तो कभी क्रोधोन्माद।

साथ ही यह अनुभूति भी कि समृद्ध, संपन्न व सुलाभी मामा अपनी हर इच्छा फलीभूत करने का सामर्थ्य रखते थे जब कि मेरे अधिकार में कुछ नहीं था।

यदि कुछ था तो चुराए हुए वे अल्पकालीन पल जिनमें मैं कजली को लूडो अथवा साँप-सीढ़ी अथवा कविता-पाठ में मग्न रखने में सफल हो जाया करता।

तनातनी व दुराव के बावजूद क्योंकि पहली बार मामा ने जब मुझे कजली के पलंग पर उसके साथ लूडो खेलते हुए पाया था, तो वह मुझे पीट दिए थे, 'यहाँ तुम पढ़ने आए हो या लड़की की बीमारी बढ़ाने? अब यह खेल-तमाशा बंद...'

जभी चुराए हुए वे पल अपर्याप्त भी रहते तथा अनिश्चित भी। जैसे ही मामा की जीप का हॉर्न गेट पर बजता मुझे तत्काल पलंग का सामान समेटकर लोप हो जाना पड़ता।

अंततः वही पल गल-फाँसी भी बने।

अनर्थकारी महाविपत्ति लाए।

उस दिन कजली और मैं 'साँप-सीढ़ी' बिछाए बैठे थे और कजली का पासा उसे एक ऊँची सीढ़ी चढ़ा ही रहा था कि मामा अपने कमरे में आन खड़े हुए। दबे कदमों से। अपनी जीप से उस दिन वह गेट के बाहर ही उतर लिए थे और हॉर्न बजा ही न था।

मामा को देखते ही कजली की तो साँस ही फूली मगर मेरे हाथ भी फूले और पाँव भी।

बल्कि मुझे तो मानो साँप ही आन सूँघा। अपने बोर्ड से मुझ पर लपकता हुआ। सांगोपांग। साथ ही त्रास इतना गहरा मन में आ बैठा कि 'मानस' की पंक्तियाँ मानो साकार हो उठीं -

'उभय भाँति विधि त्रास घनेरी,

भई गति साँप छछुंदरि केरी...'

मामा फुरतीले थे। मुझ पर झपटने में उन्होंने एक पल न गँवाया और कान से पकड़कर मुझे पलंग से नीचे ला पटके।

लानत-मलामत के साथ।

"नहीं जानता था बिन बाप का यह धींग यहाँ धींग-धुकड़ी के लिए आया है... मेरे नाम पर कालिख लगाने आया है... धिक्कार है उस दिन को जब मैंने बहन का कहा बेकहा नहीं किया..."

"दोष मेरा है, बाबा...", जभी उनकी लात-मुक्की के बीच कजली अपनी हाँफ के हिलाव-ढुलाव के साथ चिल्लाई, "...इसका नहीं। यह तो चिलबिला भोला बालक है। मैंने बुलावा भेजा तो यह आ गया..."

"तुम ने बुलाया और यह चले आए? भूल गए मैंने इन्हें यहाँ आने के लिए मना कर रखा है?" मामा अपनी आक्रामकता में तर्रारें भर लाए और कजली को उसमें मौखिक रूप में सम्मिलित कर बोले, "और तुमने उसे बुलवा भेजा! बताओ, किसलिए बुलवा भेजा? अपने राग-रंग के लिए? या फिर किसी आँट-साँट के लिए?"

"आप गलत समझ रहे हैं।" कजली हिलगी।

"इलाज तुम्हारा मैं चलाऊँ? रात में सो-सो कर मैं उठूँ? भोज मैं खिलाऊँ? भरण मैं करूँ? और, सुद्धां तुम इसके संग बनाओ?" मामा दहाड़े।

"मत करिए। मेरे लिए कुछ मत करिए। आपकी अलगागुजारी सह सकती हूँ मगर इस अल्हड़ का दुर-दुर फिट-फिट होना नहीं देख सकती..."

कजली की हाँफ हिलकोरे मारने लगी।

मामा ने अपने हाथ तत्काल रोक लिए। और कजली की ओर लपक लिए। "तुम ठीक नहीं क्या?"

"नहीं।" कजली की साँस उखड़ने लगी।

"मैं साथ वाले डॉक्टर साहब को बुला लाता हूँ।" मामा की मारपीट से पहुँचाई गई सभी चोटें भूलकर मैं दौड़ लिया।

जिस सरकारी आवासीय क्षेत्र में मामा का मकान था, उसी की बगल में सरकारी अस्पताल के एक डॉक्टर रहते थे जो पहले भी कजली को देखने कई बार घर पर आ चुके थे।

उन्हीं की सलाह पर, उन्हीं की संगति में कजली को उसी समय अस्पताल ले जाया गया। मामा की सरकारी जीप में।

जीप के ड्राइवर के साथ अर्दली को बिठलाया गया, मुझे नहीं।

वह रात मैंने आँखों में काटी। गेट की तरफ नजरें गड़ाए-गड़ाए।

मामा के लौटने की प्रतीक्षा में।

मामा नहीं आए।

जीप वाला अर्दली भी पौ फटने पर आया, "भैया जी, साहब आपको उधर अस्पताल में बुला रहे हैं..."

तत्क्षण मैं उसके साथ जीप पर सवार हो लिया।

"दीदी कैसी हैं?" मैंने पूछा। घर में सभी जन कजली को दीदी ही कहा करते।

"अब वह बचेंगी नहीं। पुराना रोग है। इस बार उन्हें लेकर जाएगा..."

मेरी रुलाई छूट ली।

अस्पताल में मामा भी मुझे रोते हुए मिले।

कजली जा रही थी, हम दोनों जान लिए थे।